स्त्री–अस्मिता का संघर्ष : चाक

डॉ. सुषमा सहरावत,
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

'चाक' उपन्यास में स्त्री–अस्मिता के संघर्ष का तीव्र रूप देखने को मिला है। अन्याय का विरोध तथा न्याय के लिए संघर्षरत मैत्रेयी जी के तमाम नारी पात्र स्त्री अस्मिता की बहस के लिए नये द्वार खोलते हैं। इस वृहदकाय उपन्यास में सारंग के मख्य चरित्र के अतिरिक्त भी अन्य अनेक ऐसे स्त्री पात्र हैं जो अपनी मुक्ति हेतु अपने अपने ढंग से संघर्ष करते दिखते हैं। स्त्री जाति आज अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है। 'चाक' द्वारा मैत्रेयी जी ने यही संदेश दिया है कि समाज में स्त्री को समान दृष्टिकोण और समान व्यवहार की अधिकारिणी समझा जाए।

मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लखित उपन्यास 'चाक' स्त्री–अस्मिता के संघर्ष की अनूठी दास्तान है। अनूठी इस मायने में कि उपन्यास के केंद्रीय पात्र सारंग नैनी का चारित्रिक विस्तार जिन पड़ावों से होकर गुजरता है, वह अत्यंत सहज नहीं कहे जा सकते। 'चाक' की उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि लेखिका ने यहाँ विभिन्न स्त्री पात्रों के माध्यम से नारी उत्पीड़न को व्यापक परिदृश्य पर उभारा है किंतु उन्हें कमजोर व्यक्तित्व प्रदान न कर अपने अस्तित्व की स्थापना हेतु संघर्ष करने वाली सुदृढ़ नारियों के रूप में स्थापित किया है। मुख्य स्त्री पात्र सारंग के संघर्षशील व्यक्तित्व के अतिरिक्त भी अन्य स्त्री पात्र, जैसे रेशम, गुलकंदी, शारदा, शकुंतला, बनिया की बहू, जिरौलीवाली आदि अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत दिखलाई पड़ते हैं । क्रूर सामाजिक स्थितियों को बदलने का दृढ़ संकल्प इनमें दिखता है।

'चाक' उपन्यास की कथा का केंद्र ब्रज क्षेत्र में अलीगढ़ की तहसील इगलास का अतरपुर नामक गाँव है। कुल एक हजार की आबादी वाले जाट बहुल इस गाँव में ब्राहमण, बनिया, नाई, कुम्हार, गडरिया, खटीक, चमार और कुछ सक्का मुसलमान भी रहते हैं। जाति व्यवस्था के प्रति संकीर्ण मानसिकता रखने वाले इस गाँव में परिवर्तन सहज स्वीकार्य नहीं है। असल में, ''यह गाँव पुराने रीति–रिवाजों और कुछ बूढ़े खैयड़ों की परम्परा निभाने वाला कबीला है। आदमी कुएँ के मेंढक।'' (पृ. 72.) जातिगत स्तर पर दकियानूसी सोच वाले इस गाँव में स्त्री की दशा प्रत्येक जाति में लगभग एक जैसी ही दयनीय है। चाहे वह जाटों की रेशम हो, बनियों की पांचन्ना बीवी हो, नाइयों की गुलकंदी हो या ब्राह्मणों की लौंगसरी बीबी हो, अपने तन–मन पर अधिकार किसी को नहीं है। जड़ मान्यताओं, परम्पराओं और रूढ़ियों से ग्रस्त इस गाँव की महिलाएँ अपने लम्बे–लम्बे घूंघटों के भीतर अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और सपनों को घुटते देखने को विवश हैं। सम्पूर्ण उपन्यास में गीतकथाओं की चंदना, मंझा रानी से लेकर रेशम, गुलकंदी आदि स्त्रियों

की दारूण कथा द्वारा लेखिका ने स्त्री जाति पर किए जाने वाले अत्याचारों व शोषणों का हृदयविदारक चित्रण कर स्त्री–अस्मिता के प्रश्न उठाये हैं। यहाँ रेखांकित करना चाहूंगी कि मैत्रेयी जी ने स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को भाषणबाजी या बयानबाजी का बोझिल रूप न देकर स्थितियों, परिस्थितयों एवं घटनाओं के विकास क्रम द्वारा सहज–सरल रूप में हमारे समक्ष रखा है। उन्होनें 'चाक' द्वारा भली–भाँति यह समझाया है कि स्त्री मुक्ति, स्त्री अस्मिता और स्त्री विमर्श जैसे प्रश्न केवल पढ़ी–लिखी शहरी महिलाओं के जीवन तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि ग्रामीण व कृषक बहुल क्षेत्र की स्त्रियों के जीवन में भी उतने ही मायने रखते हैं।

'चाक' वस्तुतः अतरपुर जैसे पिछड़े गाँव में रहनेवाली स्त्रियों का जीवन है। स्थिति यह है कि ''गाँव की ज्यादातर औरतें अनपढ़ हैं। जो पढ़ी–लिखी भी हैं, वे गोबर–पानी के काम में खपकर अपनी विद्या भूल चुकी हैं।'' (पृ. 27) यहाँ की स्त्रियों का जीवन पुरूषों द्वारा तैयार चाक पर चढ़ा हुआ वह बर्तन है जो उनके मन–मुताबिक अपने अस्तित्व को ढालने के लिए बाध्य है। यदि किसी स्त्री ने अपना व्यक्तित्व स्वयं गढ़ने का प्रयास भी किया तो उसे उसके जीवन रूपी चाक की धूरी से उतारकर अस्तित्वविहीन कर दिया जाता है। रेशम, गुलकंदी, हरिप्यारी और शारदा की हत्याएँ इसी बात का प्रमाण हैं।यहाँ की स्त्रियाँ भले ही अपने अंतर्मन की पीड़ाओं को शब्दों में मुखरित न कर पाती हों किंतु ''इस गाँव के इतिहास में दर्ज दास्तानें बोलती हैं–रस्सी के फंदे पर झूलती रुक्मणी, कुएँ में कूदनेवाली रामदेई, करबन नदी में समाधिस्थ नारायणी... ये बेबस औरतें सीता मइया की तरह भूमि प्रवेश' कर अपने शील –सतीत्व की खातिर कुरबान हो गई। ये ही नहीं, और न जाने कितनी...'' (पृ. 7.) इसी की अगली कड़ी रेशम है । उपन्यास का आरंभ ही रेशम की हत्या के प्रसंग से हुआ है। हत्या का कारण? कारण यह कि रेशम ने समाज द्वारा निर्धारित नैतिक विधानों को चुनौति देने का साहस किया। एक विधवा को गर्भधारण का अधिकार समाज नहीं देता किंतु रेशम ने विधवा होते हुए भी एक तो ''गर्भधारण किया और दिलेरी से ऐलान भी कर दिया। सबने कहा, चोरी और सीना जोरी–दोहरा अपराध।'' (पृ. 18.) यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री की स्वेच्छा कोई मायने नहीं रखती? क्या स्त्री का अपनी कोख तक पर कोई अधिकार नहीं है? क्यों उसे यह हक नहीं कि वह अपना जीवन अपने ढंग से जी सके? क्यों उसके जीवन का दिशा–निर्धारण अन्य करते हैं? विधवा स्त्री के जीवन की त्रासद स्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका ने कुछ ज्वलंत प्रश्न करते हुए कहा है कि ''रेशम विधवा थी–जमाने के लिए, रीति– रिवाजो के लिए, शास्त्रों–पुराणों के चलते घर और गाँव के लिए। विधवा सिर्फ विधवा होती है। वह औरत नहीं रहती फिर। यह बात पता नहीं उसे किसी ने समझाई कि नहीं? किसी ने कहा नहीं कि इच्छाओं के रेशमी तारों में आग लगा दे रेशम? उसने तो केवल इतना माना कि पेड़ हरा–भरा रहे तो फूल–फल क्यों नहीं लगेंगे? ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और बल्लरी लता फूले नहीं? औरत ऋतुमती हो और आग दहके नहीं?'' (पृ. 18.) रेशम जवान थी और देह की भूख की स्वाभाविक इच्छा उसमें भी थी। उसका कसूर सिर्फ इतना था कि उसने अपनी नैसर्गिक इच्छा का दमन नहीं किया और अपनी ज़िन्दगी अपने अनुसार जीने का निर्णय लिया। सास द्वारा खरी–खोटी सुनाये जाने पर वह स्पष्ट कह देती है कि ''अम्मा, तुम तो बिरथा ही दाँत किटकिटा रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती? जीतों–मरतो का भेद भी भूल गई तुम? बेटा के संग मैं भी मरी मान ली?'' रेशम जड़ मान्यताओं के विरुद्ध अकेली संघर्ष करते हुए अंतसमय तक समझौता नहीं करती। यदि वह चाहती तो सास द्वारा दिए गए 'डोरिया की बाँह थाम ले' प्रस्ताव को स्वीकार कर आराम से रह सकती थी किंतु

रेशम ने सिर्फ अपने मन की बात सुनी कि यदि वह डोरिया जैसे दुर्दांत को पसंद नही करती तो उससे ब्याह क्यों करे? वह स्पष्ट कह देती है कि ''पिता समान जेठ का हाथ पकड़ लूँ? फिर जो बच्चे का बाप है ही नहीं, उसको बाप का दर्जा क्यों दूँ? ऐसा ही करना होता तो तुम्हारे बड़े पूत का ही बालक करती।'' इसके अतिरिक्त रेशम अपने अजन्मे बच्चे को पाप हरगिज़ नहीं मानती। वह तर्कपूर्ण ढंग से उत्तर देते हुए कहती है कि ''मैं जो पुन्न कर रही हूँ अम्मा, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुँवारी–विधवा की कोख सुखा डालता।'' (पृ. 19.) अपने बच्चे को जन्म देने की इच्छापूर्ति के लिए रेशम पंचायत का सामना करने तक को भी तैयार हो जाती है। किंतु अतरपुर जैसे जड़ समाज की यह विडम्बना ही है कि यहाँ ''हत्यारों को माफी है, जनम देने वाली औरत को नहीं।'' (पृ. 21.) रूढ़िग्रस्त समाज द्वारा तय किए गए नैतिक विधानों को सरेआम चुनौती देने का साहस, और वह भी एक स्त्री द्वारा, भला कैसे स्वीकार किया जा सकता था? परिणामतः रेशम को अपने निर्णय पर अटल रहने की कीमत अपनी जान गंवाकर चुकानी पड़ती है। थानसिंह और डोरिया जैसे जड़बुद्धि जेठ–देवर रेशम और उसके अजन्मे बच्चे की हत्या कर देते हैं। वस्तुतः रेशम की हत्या उस सामन्ती सोच को उजागर करती है जिसमें स्त्री को स्वैच्छिक निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है और यदि रेशम जैसी कोई स्त्री इस मान्यता के विरुद्ध जाकर ऐसा 'दुस्साहस' करती है तो उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है।

'चाक' की केंद्रीय पात्र सारंग उन ग्रामीण स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो परिवर्तित होते परिवेश में जड़ सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रश्नाकुल हो स्त्री जाति की अस्मिता के लिए संघर्ष की राह चुनती हैं। सारंग का संघर्ष व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत है क्योंकि यदि वह चाहती तो वह भी तोता और उसकी बहू की भाति दबंगों से भयभीत होकर सब कुछ अनसुना कर सकती थी परंतु सारंग ने ऐसा नहीं किया। वह नहीं चाहती थी कि फिर किसी स्त्री के साथ ऐसा अत्याचार हो। यही कारण है कि वह अनेक विरोधों और प्रतिकूलताओं के चलते हुए भी थानसिंह और डोरिया जैसे गाँव के प्रभुत्वशाली व्यक्तियों को सजा दिलवाने की ठान लेती है। रेशम की हत्या उस पहले वाली सारंग की अंतःश्चेतना को पुनः लौटा लाती है जो कभी गुरुकुल की सबसे साहसी छात्रा रही थी लेकिन विवाहोपरांत अपनी तमाम प्रतिभा, यहाँ तक कि अपनी बोली, आचार–विचार, व्यवहार सब दरकिनार कर मात्र ''घूंघट वाली औरत रंजीत की बहू'' बनकर रह गई थी। सारंग नैनी ही गुरुकुल की वह एकमात्र छात्रा थी जिसने गुरुकुल के दमघोंटू वातावरण और अन्याय का विरोध करने का साहस कर कहा, ''कोई खाना खाने मत जाओ। विद्यालय, यज्ञशाला में पाँव तक न धरो। ये सब सूलीघर हैं। यहाँ के लोग ढोंगी हैं।'' (पृ. 91.) गुरुकुल की छात्रा शारदा को जब बर्तन माँजने वाले मणि के साथ कोठरी में रंगे हाथों पकड़े जाने पर प्रताड़ित किया जाता है तो सारंग बिफर कर शास्त्री से कह देती हैं कि ''अरे वाह! तीन दिन से शारदा को माताजी अँधेरी कोठरी में बंद किए हुए हैं, मैं पूछती हूँ क्यों? सुनते हैं, उसके हाथ–पाँव बाँध दिए हैं। खाने के नाम पर नमक का पानी दिया जा रहा है... .मालूम कराया जा रहा है कि देखो, लड़की की जरा सी इच्छा की सजा क्या होती है? तुम भी तैयार रहो, यदि आगे पाँव बढ़ाया तो?'' (पृ. 90.) यहाँ हमें सारंग के विद्रोही स्वरूप की झलक मिलती है। चंदन का विद्यालय में दाखिला, खेत में अभद्र व्यवहार करते डोरिया की जांधों के बाचों–बीच प्रहार, अपने अपमान का बदला हेतु कैलासीसिंह को न्यौता, मास्टर श्रीधर से ग्लानिरहित प्रेम तथा रति प्रसंग कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनसे सारंग की स्वनिर्णय की क्षमता और जुझारू व्यक्तित्व उजागर होता है। वस्तुतः सारंग की गुरुकुल से लेकर अतरपुर गाँव के प्रधान पद का चुनाव

 ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

लड़ने की यात्रा साहस व संघर्ष से भरी है। उसकी लड़ाई पुरूषसत्ता के खिलाफ कदापि नहीं है। यह तो स्त्री के अधिकारों को पाने के लिए किया जाने वाला संधर्ष है, स्त्री को समाज में समानता की दृष्टि से देखे जाने के हक की लड़ाई है यह। यही कारण है कि ''अपने चलते कोई अन्याय न हो'' (पृ. 417.) की भावना रखने वाली सारंग के इस संघर्ष में उसके साथी श्रीधर प्रजापति, भँवर और उसके ससुर गजाधरसिंह बनते हैं। श्रीधर सारंग को चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित करते हुए कहता है कि ''उठो तुम, तुम्हारी जैसी दृढ़ स्त्री का अनुसरण पूरी औरत जाति करेगी।'' (पृ. 400.) यही होता भी है। यद्यपि सारंग पर्चा भरने अकेली जाती है किंतु उसे महसूस होता है कि रेशम, गुलकंदी, हरिप्यारी, शारदा, शकुंतला सरीखी तमाम औरतें जो अत्याचार व शोषण का शिकार हो अपनी जान गंवा चुकी हैं, उसके साथ हैं। 'चाक' के घोषणा–पत्र में मैत्रेयी जी सारंग के विषय में लिखती हैं, ''वह रेशम की सहोदरा है या कि उन तमाम हत्या के घाट उतारे जाने वाली स्त्रियों की बहन जिनकी हिमायत में खड़े होने का नरपंगुओं में साहस नहीं। वह हर जोखिम उठाने के लिए जिन्दा है। उन संस्थाओं, व्यवस्थाओं और रूढ़ परम्पराओं को मिटाने काटने के लिए खड़ी हो जाती है जो इन्सानों में मालिक और गुलाम का अन्तर पैदा करती हैं।'' सारंग की हिम्मत और हौसला गाँव की अन्य स्त्रियों में भी स्वचेतना का संचार कर देता है। यहाँ हमें महिला–शक्ति के दर्शन होते हैं। समस्त महिलाएँ निडरतापूर्वक एक के साथ एक मिलती हुईं जुलूस का रूप अख्तियार कर जब वोट की चोट करने 'छतरी, छतरी, छतरी' का नारा लगाते हुए निकल पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई आंदोलन छिड़ गया हो। वोट की शक्ति द्वारा स्त्री–सत्ता लाने का सुअवसर वह खोना नहीं चाहतीं। वर्णन देखने लायक है – ''सक्का गडरिया, कुम्हार, खटीकों की सारी औरतें। बाम्हन–बनियों की स्त्रियाँ। जटियाना पूरा सूना हो गया। गजब! प्रधानजी ने पहली बार अपनी स्त्री पर हाथ उठाया। बेसरम कहीं की। जुलूस में जाने की जिद! काहे का जलूस?... पर प्रधानिन निकल पड़ी। बाहर क्या निकली गली में बहती खुली हवा ने बाँहों में भर लिया उसे। सुना है प्रधानिन ने भडुआ की गाली देकर कहा–पन्ना न समझ लेना इस मरमनि को, तेरे जैसे आदमी को तिनके की तरह उड़ा दूँगी।'' (पृ. 428.) अतरपुर में स्त्री–मुक्ति का यह जागरण अभूतपूर्व है। सारंग का व्यक्तित्व साहस, दृढ़ता और व्यवहारकुशलता का परिचायक है।

435 पृष्ठों के इस वृहदकाय उपन्यास में सारंग के मख्य चरित्र के अतिरिक्त भी अन्य अनेक ऐसे स्त्री पात्र हैं जो अपनी मुक्ति हेतु अपने अपने ढंग से संघर्ष करते दिखते हैं। ऐसा ही एक चरित्र गुरुकुल की छात्रा शकुंतला है जिसे गुरुकुल के शास्त्री जी से गर्भ ठहर जाने पर बुरी तरह से प्रताड़ित किया जाता है जबकि शास्त्री जी का केवल तबादला किया जाता है। शकुंतला के पिता भी उसे त्याग देते हैं। ऐसे में ''शकुंतला के लिए गुरुकुल स्थायी निवास हो गया, मगर वानखण्ड सा उजाड़... और माताजी ने वह नीति अपना ली. जिसमें अपराधी खुद–ब–खुद खत्म हो जाए। तपस्विनियों के बीच भोग विलासिनियों का क्या काम? इस कुल्टा से ब्रह्मचारिणियों का स्पर्श वर्जित। शकुंतला को हवन से दूर, मंत्रों से अलग, कक्षा से निकालकर उस कोठरी में डाल दिया गया, जिसमें लकड़ी भरी रहती थी। थाली में उपर से खाना डाल दिया जाता। लोटे में उपर से ही पानी की धार.. ग्यारहवीं में पढ़ती गुरुकुल की छात्रा छोटी होती है न नादान। संस्कृत ग्रंथ पढ़ी–लिखी विदुषी लड़की थी। तिरस्कार की भी हद होती है और निर्लज्जता की भी अपनी गुंजाइश। शकुंतला ने अपने औरतपन को साहस से साधा था। साधन वही चुना जो उसकी पहुंच में था।'' गुरुकुल की कैद से भागने के प्रयास में शकुंतला की मृत्यु

भले ही हो गई परंतु उसने गुरुकुल की घुटन भरी चारदीवारियों को लांघकर उन्मुक्त जीवन जीने की दिशा में साहसिक प्रयास अवश्य किया। वस्तुतः 'चाक' में रेशम, शारदा, शकुंतला जैसे चरित्रों की सृष्टि स्त्री के देह–स्वातंत्रय एवं स्वेच्छा के अधिकार की पुष्टि करने हेतु की गई है।

उपन्यास में पांचन्ना बीबी की दिल दहला देने वाली कथा के माध्यम से मैत्रेयी जी ने स्त्री के प्रेम के अधिकार का समर्थन करते हुए विधवा विवाह की वकालत की है। बाल विधवा पांचन्ना बीबी को मेहताबसिंह से प्रेम हो जाता है। रूढ़िवादी समाज एक बाल विधवा को ताउम्र वैधव्य का दंश झेलते हुए तो देख सकता है किंतु उसके जीवन में फिर से प्रेम की बयार बहे–यह कदापि स्वीकार नहीं कर पाता। इसी कुंद सोच के चलते पांचन्ना बीबी के पिता उसे जो सजा दिलवाते हैं वह किसी जल्लाद का ही कृत्य हो सकता है। उस अमानवीय घटना का अत्यंत मार्मिक चित्रण लेखिका ने किया है – ''चिमटा आग में दहकाया और उन लाल जलती हुई लोहे की पत्तियों को बड़े सहारे से नथिया भंगिन ने पांचन्ना बीवी की छातियों की काली जगह पर रख दिया–चूचियाँ दाग दी गई। सब निश्चिंत हुए, अब न फूटेंगी जवानी की गुद्दियाँ। बहुत फड़कती थी। चिंघाड़ ऐसी उठी थी कि महीनों तक घर काँपता रहा। (पृ. 70.) पांचन्ना बीबी के साथ किया गया यह घोर अत्याचार पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की त्रासद स्थिति को तो दर्शाता ही है, साथ ही ग्रामीण समाज में वैधव्य के अभिशाप को झेलती स्त्री की दर्दनाक तस्वीर भी प्रस्तुत करता है। इस संदर्भ में ईश्वरचंद्र विद्यासागर की ये पक्तियाँ याद आती हैं कि – ''तुम अपनी बेटियों को वैधव्य की असहय आग में सुलगाने के लिए छोड़ सकते हो और जब कामना के दबाव में उनके कदम लड़खड़ा जाएंगे तो तुम उनके आचरण पर छींटाकशी से भी बाज नहीं आओगे। क्या पति की मृत्यु के बाद उनका शरीर नहीं रहता? क्या वे पत्थर की हो जाती हैं? क्या उसमें दर्द नहीं होता? क्या वे उदास नहीं रहतीं? क्या वे अपनी चाहत और कामना से हमेशा के लिए छुटकारा पा जाती हैं? कम से कम औरत को ऐसे देश में जन्म नहीं लेना चाहिए जहाँ पुरुष के मन में उसके प्रति करुणा का अभाव हो।'' (पृ. 52–53, हंस, मई 2000) पांचन्ना बीबी की व्यथा–कथा स्त्री–अस्मिता के इस पहलू पर जोर देती है कि विधवा स्त्री को भी सामान्य स्त्रियों की भाँति जीवन जीने का हक है। उनके पति की मृत्यु के पश्चात उन्हें मृत न समझा जाए और समान व्यवहार कर उन्हें सामान्य जीवन जीने दिया जाए। पांचन्ना बीबी के अतिरिक्त अकेलेपन की टीस से जूझती लौंगसिरी बीबी, अनाथ बालिका राममूर्ति, गर्भपात का दंश झेलती मनोहर की बहू अर्थात जिरौलीवाली, अनमेल विवाह से त्रस्त बैकुंठी आदि अनेक ऐसे स्त्री पात्रों की व्यथा–कथा मन को आहत करती हैं और हम ये सोचने को विवश हो जाते हैं कि आखिर कब स्त्री जाति को ऐसी मर्मांतक पीड़ाओं से मुक्ति मिलेगी? कब उन्हें उनकी जिन्दगी पर स्वयं का अधिकार मिलेगा?

गुलकंदी और हरिप्यारी नाईन की हत्याएँ पाठक को झकझोर देती हैं। दोनों चरित्रों में अपने अस्तित्व को बचाए रखने का संघर्ष दिखलाई पड़ता है। हरिप्यारी पति के न रहने पर दूसरा विवाह न कर अकेली अपने बूते अपनी बेटी गुलकंदी को पालती है किंतु दहेज के अभाव में उसका विवाह मंगेतर रतनलाल से करा पाने में असमर्थ थी। गुलकंदी अपनी माँ की पीड़ा समझती है और इसीलिए मेले में जाकर रतनलाल से बात करने को तैयार हो जाती है किंतु वहाँ रतनलाल और छीता की बहू को संग देख अपने खटीक प्रेमी को चुनती है और उसके साथ भाग कर विवाह कर लेती है। संकीर्ण जातिवादी मानसिकता वाले लोग भला ये कैसे स्वीकार कर लेते? परिणामतः हरपरसाद होलिका दहन की रात षडयंत्र रचकर दोनों माँ–बेटी को उनके घर पर

जिन्दा जला देता है। रूढिग्रस्त समाज द्वारा गुलकंदी को अपना प्यार चुनने की सजा मिलती है और हरिप्यारी को अपनी बेटी का साथ देने की, क्योंकि ''ये दोनों लाशें गाँव पर भारी पड़ रही थीं। गाव के रीति–रिवाजों को ललकारने चली थीं। एक दहेज को अँगूठा दिखाती हुई दूसरी अपनी इच्छा से जीने के लिए मंजिल की ओर बढ़ गई।'' (पृ. 362.)

'चाक' में कलावती चाची और बनिया की बहू दो ऐसे चरित्र हैं जो स्त्री–अस्मिता की बहस को नया आयाम प्रदान करते हैं। रूढ़ नैतिकता के दायरों को पीछे ढकेलते हुए ये चरित्र अपनी साहसिक उपस्थिति से पाठक को स्तब्ध कर देने की हद तक चौकाते हैं। बनिया की बहू का प्रसंग ताड़पड़ेवाले कैलासीसिंह से सम्बधित है। बनिया की बहू के ससुराल वाले उसे बांझ समझते हैं और इसीलिए उसका पति भी दूसरी शादी करने का मन बनाने लगता है किंतु बनिया की बहू स्वयं को बांझ न मान अपने पति की मर्दानगी की कमी मानती है। यह सिद्ध करने के लिए वह अखाड़े में कुश्ती करने वाले पहलवान कैलासी सिंह से उसके वीर्य की दो बूंदे दानस्वरूप माँगती है। कैलासी सिंह इसके लिए तैयार तो हो जाता है किंतु अपनी उम्र भर की साधना खंडित हो जाने के भय से संसर्ग से पूर्व ही उसकी मर्दानगी क्षीण हो जाती है। विचार की बात यह है कि किसी भी स्त्री के लिए परपुरूष से संसर्ग की इच्छा व्यक्त करना अत्यंत कष्टप्रद स्थिति है। बनिया की बहू के लिए भी यह आसान नहीं था। मानसिक ऊहापोह व संकोच के चलते लगभग एक महीने तक रोज पहलवान के समक्ष अपनी इच्छा व्यक्त करने के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने के उपरांत ही अंततः अपनी पीड़ा और इच्छा व्यक्त कर सकी थी। वस्तुतः नैतिकता के वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करना किसी भी स्त्री के लिए सरल नहीं है किंतु परिस्थिति, आवश्यकता और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की इच्छा ऐसे कारक हैं जिनके चलते बनिया की बहू जैसी सरल ग्रामीण स्त्री भी ऐसा साहस कर पाती है। ऐसी ही एक अन्य पात्र है 'चाक' की कलावती चाची जो अभूतपूर्व निणर्य और हौसले के कारण विलक्षण पात्रों की श्रेणी में आती है। 'दूती लुगाई के नाम से मशहूर' (पृ. 86.) कलावती चाची के अधपगले पति उसे दो बच्चों के साथ छोड़ कहीं पलायन कर गए थे। अतः उन्हें अकेले ही समस्त दायित्वों का निर्वाह करना पड़ा। निडर और बेधड़क व्यक्तित्व की स्वामिनी कलावती चाची का अपने से उम्र में कहीं छोटे कैलासीसिंह के साथ रति प्रसंग और फिर उसका वर्णन सारंग के समक्ष बेधड़क करना चर्चा का विषय रहा है। यहाँ मैं रेखांकित करना चाहूँगी कि इस प्रसंग को अन्यथा न लेकर एक स्त्री के साहसिक प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि अपने उम्र के बड़े अन्तराल को दरकिनार करते हुए हीनता बोध से ग्रसित कैलासीसिंह को शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए तैयार करना कलावती चाची के लिए भी आसान नहीं रहा होगा ऐसा करके उन्होनें आत्मग्लानि से त्रस्त कैलासीसिंह को नवीन जीवन दान ही दिया।

स्त्री–अस्मिता के संघर्ष का तीव्र रूप चाक में देखने को मिला है। अन्याय का विरोध तथा न्याय के लिए संघर्षरत मैत्रेयी जी के तमाम नारी पात्र स्त्री अस्मिता की बहस के लिए नये द्वार खोलते हैं। स्त्री जाति आज अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है। 'चाक' द्वारा मैत्रेयी जी ने यही संदेश दिया है कि समाज में स्त्री को समान दृष्टिकोण और समान व्यवहार की अधिकारिणी समझा जाए।

संदर्भ–ग्रंथ

1. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, प्रथम संस्करण, 1997
2. चाक का घोषणा–पत्र, मैत्रेयी पुष्पा, सम्पादक विजय बहादुर सिंह, प्रथम संस्करण
3. 'हंस' पत्रिका, मई 2000.